International Referred Research Journal,June,2011 ISSN-0975-3486 RNI: RAJBIL 2009/30097 VOL-II *ISSUE 21
शोध पत्र- चित्रकला

गीत गोविन्द : भारतीय लघु चित्रों के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

* बीना जैन
* व्याख्याता, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

June, 2011

जयदेव के 'गीत–गोविन्द' ने जितनी यात्रा कलाक्षेत्र में की है, उतनी यात्रा किसी अन्य की रचना ने नहीं की है। सुदूर हिमालय के पहाड़ों के बीच बसोहली, काँगड़ा, गुलेर व गढ़वाल से लेकर सुदूर दक्षिण खानदेश तक और पश्चिम में बीकानेर, जोधपुर से लेकर बंगाल, उड़ीसा और मणिपुर तक 'गीत–गोविन्द' की चित्रमालाएँ, 'गीत–गोविन्द' से सम्बद्ध अनंत कथानकों का एक वितान छाया हुआ है।

जयदेव कृत 'गीत–गोविन्द' भारतीय चित्रकला में अतुलनीय स्थान रखता है, क्योंकि इस काव्य ग्रन्थ में प्रेम के शाश्वत एवं आध्यात्मिक पक्ष को अनुभूति के चरम स्तर तक उभारा गया है। राधा और माधव की रासलीला का जैसा विलक्षण चित्रण इस संस्कृत काव्य ग्रन्थ में हुआ है, वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। अतः 'गीत–गोविन्द' भारतीय चित्रकला को विश्व में सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करता हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के राजकवि जयदेव विष्णु–स्वामी सम्प्रदाय से थे।[1] उनका जन्म पश्चिमी बंगाल के बीरभूम जिले के उपखण्ड सूरी में, बोलपोर थाने के अन्तर्गत ग्राम केन्दुली में हुआ था। पिता भोजदेव और माता रामादेवी के सुपुत्र जयदेव के आरम्भिक जीवन के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती, किन्तु नाभादास के ग्रन्थ 'भक्तमाल' (1578 ई.) से ज्ञात होता है कि उन्हें आरम्भ से ही संस्कृत का विशद् ज्ञान था। नाभादास उन्हें 'काव्य का अवतार' मानते थे।[2]

'गीत–गोविन्द' वास्तव में जयदेव द्वारा अपनी पत्नी पद्मावती के संग गाये गोविन्द के भजनों से उद्धृत माना जाता है। बारह सर्गों एवं तीन सौ श्लोकों में विस्तृत यह काव्य आज के संदर्भ में 'ओरियन्टल ओपेरा' माना गया है। इसका प्रत्येक श्लोक अलग–अलग राग में निबद्ध है, राग–बसन्त, राग–मालव एवं रागिनी–गुजरी में अधिकांश सर्ग रचे गये है।[3] वास्तव में 'गीत–गोविन्द' की रचना जयदेव ने एक संगीत प्रबन्ध के रूप में की थी, उनके जीवन काल में ही उनकी अष्टपदियाँ उनकी अर्चना का अंग बन गई थी। 'गीत–गोविन्द' में प्रत्येक गीत गोविन्द है, गोचर रूप–सौंभर के लिए, गोचर प्राण–पुकार के लिए, गोचर निःश्वास–सुरभि के लिए विश्वमोहन की बैचेन तलाश है। 'गीत–गोविन्द' एक चिर अभिलाषा का सनातन आकुलता का काव्य है यह मोक्ष का भी मोक्ष है।[4]

'गीत–गोविन्द' जयदेव की एक मात्र उपलब्ध कृति है। जर्मन कवि गैटे ने 'शाकुन्तलम्' और 'मेघदूत' के समान ही 'गीत–गोविन्द' को भी सराहा है। डॉ. कीथ का कहना है कि प्रेम–काव्य के रूप में 'गीत–गोविन्द' भारतीय साहित्य में अप्रतिम है।[5] डब्ल्यू.जी. आर्चर के मतानुसार, ''इस काव्य में जयदेव ने संस्कृत की प्रेम–काव्य–परम्परा को राधा और कृष्ण में उतारने की चेष्टा की है। संस्कृत काव्य–परम्परा के अनुसार नारी–सौन्दर्य को उन्होंने चित्रित किया। प्रेम, प्रकृति और ऋतुओं को उन्होंने अपने काव्य में पिरोया है एवं घटनाओं और उनसे जुड़ी मानसिकता का सहज चित्रण किया है।''

'गीत–गोविन्द' की साहित्यिक लोकप्रियता का एक यह भी प्रमाण है कि यह कृति संसार की अनेक सभ्य भाषाओं में अनूदित हो चुकी है जिनमें अंग्रेजी, फ्रेंच व लैटिन आदि उल्लेखनीय हैं सबसे पहले अंग्रेजी में विलियम जोन्स ने इसका रूपान्तर किया, जो 1792 ई. में प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी में ही आर्नाल्ड ने इसका जो भावानुवाद प्रस्तुत किया है वह 'सॉन्ग ऑफ सॉन्स' (1775 ई.) के रूप में सामने आया है।[6] अनेक भारतीय भाषाओं तथा लोक–भाषाओं में भी इसके अनुवाद उपलब्ध है। अभी तक लगभग चौदह–पन्द्रह पद्यानुवाद व गद्यानुवाद एवं संस्कृत व हिन्दी में पैंतीस टीकाओं की सूचना मिली है।

'गीत–गोविन्द' की सारी अष्टपदियाँ इतनी बिंबात्मक और सहज लालित्य से भरपूर है कि उन्होंने चितेरों को, विशेषकर मध्यकालीन चितेरों को बेहद आकृष्ट किया। मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी और अनेक आंचलिक शैलियों में 'गीत–गोविन्द' के प्रसंगों पर मनोरम रूपायन किये गये। 'गीत–गोविन्द' के प्रसंगों पर आधारित सर्वप्रथम चित्र गुजरात शैली में मिलते हैं, जिनका अंकनकाल लगभग 1450 ई. है।[7] राय आनन्दकृष्ण ने उल्लेख किया है कि सोलहवीं सदी से 'गीत–गोविन्द' के चित्र मिलने लगते हैं। इसके पूर्व भी चित्र बने होगें, लेकिन वे उपलब्ध नहीं हैं। उड़ीसा में अठारहवीं सदी के मध्य से 'गीत–गोविन्द' की सचित्र प्रतियाँ मिलने लगती है। आरम्भिक राजस्थानी शैली की एक सुन्दर चित्रमाला प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में है। यह 1550 से 1575 ई. के मध्य चित्रित हुई। इस चित्रमाला की विशेषता निसर्ग व मनोभावों का सूक्ष्म अंकन है।[8]

सोलहवीं सदी के अन्त की एक चित्रावली एन.सी. मेहता संग्रह, मुम्बई में है। इसमें एक सौ एक चित्र हैं तथा यह गुजरात शैली में है। इस चित्रमाला के चित्रों पर नाट्य–प्रभाव भी स्पष्ट दीख पड़ता है।[9] सत्रहवीं सदी के आते–आते राजस्थान और पहाड़ी रियासतों में लघुचित्र परम्परा खूब फली–फूली अतः

मेवाड़, बीकानेर, किशनगढ़, बूंदी, कोटा, काँगड़ा, गुलेर, बसोहली व मण्डी में भी 'गीत–गोविन्द' पर आधारित मनोरम रूपायन हुए। मेवाड़ में साहिबदीन और बीकानेर में रूकनुद्दीन ने अत्यन्त मनभावन लघुचित्र बनाये।[10] किशनगढ़ कलम में निहालचंद की तूलिका से 'बणी–ठणी' जैसी महान् राधा रूपायित हुई।[11] कपिलाजी ने सचित्र पाँच 'गीत–गोविन्द' के मोनोग्राफ प्रकाशित किये हैं। मेवाड़ी 'गीत–गोविन्द' इनमें सर्वाधिक प्रशंसनीय है। पहाड़ी शैलियों में सर्वाधिक समादृत शैली काँगड़ा की रही, जहाँ मानक अथवा मानकू नामक चितेरे ने 'गीत–गोविन्द' की चित्रावली रची। मानक (मानकू) के संरक्षण में बसोहली व काँगड़ा में 'गीत–गोविन्द' पर केन्द्रित रूपायन बने।[12] प्रख्यात कलाविद्

fp=&1 ¼*jk/kk dh ykyl k*] xhr-xkfoUn] igkMh dkxMk 'kSyh] 1800 bZ- jk"Vªh; laxzgky;] ubZ fnYyh

डॉ. एम.एस. रन्धावा ने इन चित्रों को खोजा तथा इनके विवरण सहित इन्हें प्रकाशित किया। इसी तरह महाराजा संग्रामसिंह द्वितीय के शासनकाल (1710–1735 ई.) में मेवाड़ में 'गीत–गोविन्द' पर आधारित चित्रों की एक लम्बी श्रृंखला भी चित्रित की गई। यह अब सरस्वती भण्डार, उदयपुर में संगृहीत व सुरक्षित है।[13] बसोहली शैली में राजा मेदनीपाल के समय (1730 ई.) में 'गीत–गोविन्द' पर आधारित चित्र बने। राजा संसारचन्द (1750–1823 ई.) का काल न केवल काँगड़ा या पहाड़ी कला शैलियों के इतिहास में, अपितु समूची भारतीय चित्रकला के इतिहास में अद्वितीय है। इस महान् कला प्रेमी शासक के उत्कृष्ट योगदान के कारण काँगड़ा कलम के चित्र चित्रकला के इतिहास कीधरोहर बन गये।[14] (चित्र–1) प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में राधा के मानभाव का एक सुन्दर चित्र काँगड़ा शैली में अंकित है। इस चित्र में नाट्य तत्त्व भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'गीत–गोविन्द' के चित्रों की एक श्रृंखला 1590 ई. में जौनपुर, उत्तर प्रदेश में चित्रित हुई, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में संगृहीत है। अकबर काल (1615 ई) में चित्रित 'गीत–गोविन्द' में राधा और उसकी सखियों को मुगल वेशभूषा में दर्शाया गया है। पश्चिमी राजस्थान में 1610 ई. में चित्रित 'गीत–गोविन्द' जैन शैली में है। 1820 ई. में राजा कल्याण सिंह के काल में किशनगढ़ शैली में भी 'गीत–गोविन्द' पर आधारित चित्रों की एक लम्बी श्रृंखला बनी।[15] देश–विदेश के विभिन्न संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहों में 'गीत–गोविन्द' के ये मनोहारी रूपायन सुरक्षित हैं। यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अभी तक जितने सचित्र 'गीत–गोविन्द' प्रकाश में आये हैं, वे स्थापित शैलियों में चित्रित हैं व राजाश्रय में चितेरों ने बनाए हैं, लेकिन सन् 1995 ई. में धुले (महाराष्ट्र) में एक ऐसा सचित्र 'गीत–गोविन्द' प्राप्त हुआ, जो एक समन्वित लोकशैली में चित्रित किया गया है एवं 1765 ई. में पूर्ण हुआ। इसमें कुल दो सौ नब्बे लघुचित्र हैं। यह वर्तमान में समर्थवाग्देवता मन्दिर, धुले में हैं।[16] यद्यपि इस पर मालवा, मेवाड़, जयपुर, नाथद्वारा, दकनी व नागपुर कलमों का भी प्रभाव है, किन्तु रंग देशज है तथा परिवेश पूर्णतः आंचलिक हैं। परिधान व प्रतीक भी स्थानीय हैं। सामान्य रूप से, 'गीत–गोविन्द' एक लम्बी संस्कृत कविता है, लेकिन इतनी गीतमय कि चाहे उसे चितेरा देखे, नर्तक देखे या संगीतकार देखे, उससे गुजरते समय वह स्वयं गीत हो जाता है। इस काव्य का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि इसने भारतीय ललित कलाओं के इतिहास में अपने आपको शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया। यह जितना अभिनीत हुआ, गाया गया, चित्रित किया गया या नृत्य में ढाला गया, उतना ही लोकप्रिय होता गया। प्रख्यात विदुषी डॉ. बारबर स्टॉलर मिलर के मतानुसार ''जयदेव की गीतमय नाट्य कविता 'गीत–गोविन्द' भारतीय साहित्य का अनूठा काव्य है। यह मध्यकाल और वर्तमान में प्रचलित वैष्णव दर्शन की धार्मिक प्रेरणा है। यह कृष्ण के प्रति भक्ति को अर्पित काव्य है। यह कृष्ण और गोपी राधा के वासन्ती प्रेम की अमर कहानी है। जयदेव ने बड़ी कुशलता के साथ मानवीय और दैवीय प्रेम के उलझे हुए आयामों को अभिव्यक्त किया हैं।'' (दि गीत गोविंदा ऑफ जयदेव–लव सॉन्ग ऑफ डार्क लॉर्ड, पृष्ठ 9–10, भूमिका) चिर नवीन बने रहना ही 'गीत–गोविन्द' की आत्मा है। भारतीय मानस की यह विशिष्टता है कि सृजन के प्रत्येक पक्ष को वह सहेजता है और उसे विरासत के रूप में सौंप देता है। 'गीत–गोविन्द' की यह विरासत आज भी विद्यमान है, अपने मौलिक रूप में।

संदर्भ ग्रंथ

1. किशोरीलाल वैद्य : पहाड़ी चित्रकला, दिल्ली, 1969, पृष्ठ सं. 55 2. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय : भारतीय चित्रांकन परम्परा, दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 155 3. M.S. Randhawa : Kangra Paintings of the Gita Govinda, New Delhi, 1963, pp:49-50 4. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय : भारतीय चित्रांकन परम्परा, दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 154 5. किशोरीलाल वैद्य : पहाड़ी चित्रकला, दिल्ली, 1969, पृष्ठ सं. 57 6. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय : भारतीय चित्रांकन परम्परा, दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 176 7. अविनाश बहादुर वर्मा : भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली, 1977, पृष्ठ सं. 105 8. R.K. Vashistha : Art and Artists of Rajasthan, New Delhi, 1995, Plt-5 9. N.C. Mehta & Moti Chandra : The Golden Flute, Delhi, 1962, Plt-3 10.Douglas Barrettt & Basil Gray : Painting of India, Cleveland, 1963, Page 155 11. M.S. Randhawa : Indian Miniature Painting, New Delhi, 1981, page 82 12. N.C. Mehta : Studies in Indian Painting, Bombay, 1926, pp:49-50 13. R.K. Vashistha : Art and Artists of Rajasthan, New Delhi, 1995, Plates 21-22, pp: 29-30 14. M.S. Randhawa : Kangra Paintings of the Gita Govinda, New Delhi, 1963, Page 31 15. Eric Dickinson & Karl Khandalavala, Kishangarh Painting, New Delhi, 1959, Plt- 15, Page 17 16. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय : भारतीय चित्रांकन परम्परा, दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 183